प्रवचन नं. १७ गाथा-१९-२० शनिवार, दिनाङ्क ०१-०४-१९६६
चैत्र शुक्ला १२, वीर संवत् २४९२

इष्टोपदेश, १९वीं गाथा चलती है। शिष्य का प्रश्न था कि इस शरीर का उपकार लक्ष्मी से तो उपकार नहीं होता। धन आदि, स्त्री-कुटुम्ब आदि से इस शरीर का तो नहीं होता, परन्तु आत्मा का तो उपकार होता है न? लक्ष्मी आदि सब अनुकूल होवे तो आत्मा को धर्मध्यान में सरल पड़े, तो आत्मा को लक्ष्मी आदि सब उपकारक हैं या नहीं? वे तो उपकारक हैं न? अनुकूल, इतना तो कहो। समझ में आया? लक्ष्मी आदि शरीर को भले उपकारक न हो, परन्तु आत्मा को तो उपकारक होते हैं, लक्ष्मी आदि; एक तो अपवास आदि करे उससे और फिर लक्ष्मी आदि दोनों से उपकार होता है। आत्मा का ध्यान करे, ज्ञान करे, और शरीर के साधन में लक्ष्मी आदि होवे तो उस साधन से उपकार (होवे)। उपकार होता है या नहीं मोहनभाई? लक्ष्मी होवे तो यहाँ निवृत्ति लेकर बैठे हो न? देखो! कहो, क्या है इसमें पोपटभाई!

मुमुक्षु : जेचन्दभाई को ही पूछो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जेचन्दभाई को नहीं पूछा जाता। अभी वे तो शरीर से दुःखी हुए हैं। उन्हें शरीर की (बात) होवे तो उन्हें पूछा जाये।

शिष्य का प्रश्न है कि इस आत्मा का उपकार... शरीर को उपकार न हो - लक्ष्मी से, बाहर के साधन से शरीर का भले उपकार न हो, परन्तु आत्मा का तो उपकार होता है न बाह्य साधन से? आत्मा का ज्ञान-ध्यान भी होता है और फिर शरीर के बाहर के साधन लक्ष्मी आदि होवे तो आत्मा को लाभ हो। दान दिया जाए, भक्ति हो, पूजा हो, प्रभावना की जाए - ऐसे दोनों उपकार आत्मा को हो। (तो कहते हैं) नहीं, नहीं; भाई! ऐसा नहीं है। तू कहता है - ऐसा नहीं है।

देखो! विशदार्थ है न? १९ वीं गाथा का विशदार्थ। **जो अनशनादि तप का अनुष्ठान करना,..** अर्थात् आत्मा का ज्ञान-ध्यान करना। १९वीं गाथा का विशदार्थ। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, शुद्ध पवित्र है, उसका अन्तर में एकाग्र होकर ध्यान करना, उसे

यहाँ तप कहते हैं। बाह्य तप से व्याख्या की है। समझ में आया? अनशन आदि, अवमौदर्य आदि तप हो, तब अन्तर में स्वभाव सन्मुख की एकाग्रता होवे, इसलिए उसे अनशन से-निमित्त से ज्ञान कराया है। अन्तर में निवृत्ति होवे तो आत्मा का ध्यान हो, आहार की इच्छा छूट जाए, ऐसे ध्यान से आत्मा को लाभ हो। इससे **जीव के पुराने व नवीन पापों को नाश करनेवाला होने के कारण,..** आत्मा पवित्र भगवान के अन्तर में एकाग्र होने से आत्मा को पुराने कर्मों का नाश होता है। समझ में आया?

नवीन पापों को नाश करनेवाला होने के कारण,.. लो! **जीव के पुराने व नवीन पापों को नाश..** उन पुराने का नाश होवे और नये बँधे नहीं, इसलिए नये का नाश होवे - ऐसा इसका अर्थ है। **जीव के लिये उपकारक है, उसकी भलाई करनेवाला है,..** आत्मा को। **वही आचरण या अनुष्ठान शरीर में ग्लानि शिथिलतादि भावों को कर देता है,..** जहाँ आत्मा का ध्यान-ज्ञान आदि करे, (तब) शरीर में ग्लानि हो, शरीर में आहार आदि हो नहीं, शरीर कमजोर पड़ जाए। आत्मा के उपकार के लिए अन्दर के श्रद्धा-ज्ञान आदि ध्यान है, वह शरीर को नुकसान का कारण है। यहाँ निमित्त से बात है, हों! समझ में आया? अपने स्वरूप का ज्ञान, धर्मध्यान करे (तो) शरीर की दरकार न रहे। शरीर में शिथिलता हो, ग्लानि हो, आहार न हो, बैठक में दुःख हो, अन्दर ऐसा हो। समझ में आया? तो शरीर में ग्लानि आदि, शिथिलतादि के निमित्त भाव हो।

अतः उसके लिये अपकारक है,.. शरीर के लिये आत्मा का धर्म, वह अपकारक-नुकसान का निमित्त है। समझ में आया? **उसे कष्ट व हानि पहुँचानेवाला है।** देखो! आत्मा अपना ज्ञान-ध्यान करे, श्रद्धा-ज्ञान करे, चारित्र/ स्वरूप में रमे, (उससे) आत्मा को लाभ होता है, परन्तु यह अनुष्ठान शरीर को कष्ट करता है, शरीर को जीर्ण करता है, कमजोर कर दे, हानि पहुँचावे, शरीर को हानि पहुँचा दे। आत्मा को लाभ करे, वह शरीर को नुकसान करे - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी निमित्त की बात है। करने की कहाँ बात है? यहाँ तो आत्मा अपने स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान में रुकता है, तो शरीर की दरकार नहीं रहती। शरीर में ग्लानि, हानि, रोग इत्यादि हो आवें तो यह आत्मा का अनुष्ठान अपने आत्मा को

लाभदायक है, परन्तु शरीर को नुकसान का निमित्त होता है, क्योंकि यह होता है तो वह पर्याय तो उसके कारण से होती है। समझ में आया? यह दूसरे ढंग से बात है।

मुमुक्षु : दोनों पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : और दो किसमें कही? दो कही कहाँ से?

मुमुक्षु : भिन्न-भिन्न द्रव्यों की...

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न-भिन्न द्रव्यों की भिन्न-भिन्न पर्याय। आत्मा-अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप है, उसे अन्तर में साधता है, तब स्वयं को लाभ होता है, आत्मा को उपकार होता है, परन्तु शरीर को नुकसान होता है। उस समय शरीर का ध्यान नहीं रहता। नुकसान होता है अर्थात्? उस समय वह पर्याय होने की, परन्तु उसे इस भाव में निमित्त गिनकर, नुकसान होता है - ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? यहाँ तो गुजराती भाषा है। तुम समझते नहीं? हिन्दी समझते हो? यहाँ मराठी नहीं, मराठी भाषा नहीं। यहाँ तो किसी को आती नहीं। यहाँ तो मराठी किसी को नहीं आती। समझ में आया?

आत्मा अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसका जहाँ ध्यान करे तो धर्मी जीव को शरीर की दरकार नहीं रहती। धर्मी को अपने आत्मा का लाभ हो, अपने अनुष्ठान दर्शन-ज्ञान-चारित्र से (आत्मा को लाभ हो), ऐसे अनुष्ठान से शरीर को नुकसान हो। शरीर ग्लानि हो, जीर्ण हो, हानि पहुँचे, शरीर में कुछ दरकार रहे नहीं। बराबर है? शरीर को **कष्ट व हानि पहुँचानेवाला है।** परन्तु इसका अर्थ क्या? शरीर की शिथिलता हो, ग्लानि हो यह।

मुमुक्षु : अपवास करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास यह ऐसा नहीं, अपवास-बपवास नहीं। अपवास अर्थात् आत्म उपवास ऐसे अपवास। आत्मा ज्ञान शुद्धस्वरूप का अन्तर आचरण, अनुष्ठान अर्थात् आचरण, आत्मा अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका अनुष्ठान-अन्तर में एकाग्रता का आचरण, वह आत्मा को धर्मरूप मुक्ति का कारण है, आत्मा को उपकारक है। वह अनुष्ठान शरीर की दरकार बिना होता है। इसलिए शरीर की क्रिया में वह निमित्तरूप

से नुकसानकारक है। ग्लानि हो, शरीर की दरकार न हो, धर्मी को आहार-पानी कैसे मिलना, न मिलना, उसके साथ कुछ लक्ष्य न हो, इससे शरीर को नुकसान हो। यहाँ तो वह आत्मा को हितकारक, वह इसे (शरीर को) नुकसानकारक; इसे (शरीर को) नुकसानकारक, वह आत्मा को हितकारक, यह यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा!

और जो धनादिक हैं, वे भोजनादिक के उपयोग द्वारा क्षुधादिक पीड़ाओं को दूर करने में सहायक होते हैं। जो लक्ष्मी है, वह भोजनादिक उपयोग द्वारा क्षुधादिक मिटाने में अनुरूप होती है। **अत: वे शरीर के उपकारक हैं।** लक्ष्मी आदि से शरीर का- इस धूल दुश्मन का पोषण होता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, इससे शरीर दुश्मन विरुद्ध है। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब अच्छी सेवा करनेवाले हों तो शरीर को लाभ होता है। यह निमित्त से बात है, हों! **शरीर के उपकारक हैं। किन्तु उसी धन का अर्जनादिक पापपूर्वक होता है।** परन्तु यह लक्ष्मी कमाना वह तो अकेला पाप, पाप और पाप है। कमाना पाप, उपार्जन करना पाप, उसे खर्च करने का भाव भी भावबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : कमाये नहीं तो खाये कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कमाता था ? धूल। ठीक! अभी तो इसे कमाना है। देखो! एक ओर कहते हैं, मुझे पैसा मर गया, ऐसा कहते हैं एक ओर, तथा एक ओर कमाना, उसे कमाना कहते हैं।

मुमुक्षु : गहरे-गहरे तो लक्ष्मी...

पूज्य गुरुदेवश्री : गहरे-गहरे तो अन्दर लक्ष्मी बहुत अच्छी लगती है। धूल में भी लक्ष्मी अच्छी नहीं है वहाँ। वह तो यहाँ कहते हैं कि जो लक्ष्मी शरीर आदि को उपकारकरूप दिखायी देती है, भोजन-पानी, आहार-पानी, सोना, गद्दा, पानी, मकान-बकान मिले, वह आत्मा को नुकसानकारक है, क्योंकि उसकी पैसा कमाने की चिन्ता और वर्तमान पैसा है, उसे वापस खर्च करने का भाव, वह भी बन्ध का ही कारण है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : खाये कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ? परन्तु खाता कौन है ? खाता है, कौन खाता है ? आहाहा!

अरे! भाई! वह तो पैसा आदि होवे तो शरीर को मिले, परन्तु शरीर तो दुश्मन है। उसे लाभ हो और इसे (आत्मा को) नुकसान हो, आत्मा को तो नुकसान होता है। दुश्मन है। जड़ और चैतन्य दोनों विरोधी तत्त्व है। यहाँ यह कहना है न!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हैरान कोई नहीं करता, व्यर्थ में मानता है। समझ में आया? लड़के कहाँ कमाते हैं? लड़का खाता है या नहीं? दो वर्ष का लड़का और दो वर्ष की लड़कियाँ कहीं कमाने जाते हैं? उन्हें मिलता है या नहीं?

मुमुक्षु : उनके लिए उनका बाप कमाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो, किन्तु उनके पुण्य के कारण मिलता है न! बाप कमाता है, इसे पुण्य के कारण मिलता है। बाप तो पाप करता है। कमानेवाला तो अकेला पाप करता है। पाप से लक्ष्मी उपार्जन करे, पाप बाँधकर। कहो! अब वह लक्ष्मी शरीर को लाभ करे तो आत्मा को नुकसान करती है, ऐसा कहते हैं। अरे! लक्ष्मी की ओर लक्ष्य जाकर दया, दान में खर्च करना कदाचित् (होवे), वह भी शुभभाव बन्ध का कारण है। वह आत्मा को नुकसान का कारण है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर के प्रति लक्ष्य जाता है न इसका? आहाहा!

मुमुक्षु : जगत के लोग कहते हों, उनकी अपेक्षा आपकी बात एकदम अलग ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया की अपेक्षा वीतरागमार्ग ही अलग है। समझ में आया?

भाई! आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। यह शरीर मिट्टी, धूल का पिण्ड है। अब इसे कुछ भोजन आदि से लाभ हुआ परन्तु आत्मा को तो इसकी ओर के लक्ष्य और ममता से नुकसान हुआ। समझ में आया? **शरीर के उपकारक हैं। किन्तु उसी धन का अर्जनादिक..** अर्जनादिक अर्थात् उपजाना, यह कमाना, यह खर्च करना, सम्हालना, ब्याज पैदा करना, दूसरों को देना, यह सब **पापपूर्वक होता है।** उसका स्वामी हो, लक्ष्मी, लो न दूसरों को दे वहाँ कहे, मैंने दी, लक्ष्मी मेरी थी। यह मिथ्यात्व का पाप बँधता है। कहो, समझ में आया? लक्ष्मी तो पर है, जड़ है, अजीवतत्त्व है। उसे यह माने कि मैंने दिया, मैंने यह काम

किया, देखो! इतने धर्मादा के मैंने खर्च किये। वह अपने में अजीव का स्वामी होता है। उसे मिथ्यात्व का पाप लगता है, महान पाप।

मुमुक्षु : देने से पाप होवे तो कौन दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : देने से पाप किसने कहा? वह मेरा है, ऐसा मानता है कि मैंने यह दिया, ऐसा मानता है, वह मिथ्यात्व का पाप है। ऐसा कहा था। कहो, समझ में आया इसमें? जड़ का एक रजकण भी इससे लिया नहीं जाता, देने से दिया नहीं जाता, लेने से लिया नहीं जाता, तथापि अज्ञानी मानता है कि देखो! यह पाँच-पच्चीस लाख मिले। बारह महीने में पचास हजार तो हमारे हमेशा घर में से जाते हैं। उनका अभिमान होवे उसे। समझ में आया? परन्तु मूढ़ पचास हजार तेरे कहाँ (थे)? वे तो जड़ के थे, अजीव के हैं, वे तो मिट्टी के हैं।

मुमुक्षु : किसी को बात करनी हो तो किस प्रकार करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : करने की बात कौन करता है यहाँ? बात का कहाँ काम है यहाँ! समझ में आया? उस लक्ष्मी से शरीर को लाभ दिखता है। आहार-पानी मिले, गर्म फूले हुए फूलिया क्या कहलाते हैं? फूलके मिलें, नौकर अच्छे हों ऐसे ठीक से, सब... मिले, हलुवा मिले, पैसा होवे तो सब (मिले) परन्तु वह तो धूल को और इस बैरी को, बैरी को लाभ है। तुझे तो नुकसान है। तेरा स्वरूप का लक्ष्य चूककर जितना पर के प्रति लक्ष्य जाता है, वह सब तुझे नुकसानकारक है। ऐसा कहते हैं। कैसे होगा? ओहोहो!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ नहीं, यहाँ कुछ नहीं। यहाँ तो धर्म की बात चलती है। वह मानो कुछ पूछें। यहाँ तो आत्मा के धर्म की बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

अर्जनादि शब्द है न? पैसा इकट्ठा करना, स्त्री-पुत्र को रखना, उसका विवाह करना, उसे पैदा करना, यह सब अकेला पाप, पाप और पाप है। दुकान में बैठाया, उसे सम्हाल करना, ध्यान रखना, तुम अब निश्चिन्त रहना, यह सब भाव पाप, पाप और पाप है। कैसे होगा, नटुभाई? फिर वकालात को पूछते हैं। आहाहा!

वे पापपूर्वक होने से दुर्गति के दुःखों की प्राप्ति के लिये कारणभूत है। यह

लक्ष्मी, कुटुम्ब, स्त्री, जिसे शरीर का लाभदायक माने कि भई यह सब हो तो सेवा करे, सुश्रुषा करे तो शरीर को ठीक हो तो आत्मा को लावी... फिर शिष्य कहेगा। शिष्य प्रश्न करेगा, भाई! शरीर से तो कितना उपकार होता है, तुम यह क्या कहते हो? सब काठी निकाल डालना चाहते हो, सब काठी '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' सुन! यह फिर कहेंगे। समझ में आया?

भाई! तेरी चीज़ तो, प्रभु! अखण्ड आनन्द शुद्ध कन्द आत्मा है, सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसका अन्तर साधन अपनी अन्तर से एकाग्रता से होता है। एकाग्रता से होता है, उसमें शरीर-बरीर कुछ लाभ नहीं करता। लक्ष्मी, शरीर, सब कुटुम्ब, सब सुविधा हो, लोग ऐसा कहते हैं न भाई, सब सुविधा होवे न तो ऐई! धूल में भी नहीं, सुन न! बाहर की सुविधा शरीर को निमित्त है, तुझे तो नुकसानकारक है। कहो, मोहनभाई! पोपटभाई! छह-छह लड़के हों, इतने पैसे हों, जाओ बापूजी, जाओ बापूजी जाओ। यहाँ मकान पच्चीस हजार करके रहे हैं निश्चिन्तता से, लो! पैसा धूल भी नहीं कहते हैं। वह तो बाहर के निमित्त हैं, शरीर के लिये निमित्त हुए। आत्मा को क्या हुआ? आत्मा ने तो जितना आत्मद्रव्य को छोड़कर परद्रव्य पर लक्ष्य का आश्रय जितना किया है, सब आत्मा को नुकसान और बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? आहाहा! देखो!

वे पापपूर्वक होने से दुर्गति के दुःखों की प्राप्ति.. दुर्गति। दुर्गति अर्थात् आत्मा की गति के अतिरिक्त सब दुर्गति है। फिर स्वर्ग में जाये तो भी दुर्गति है और मनुष्य होवे तो भी दुर्गति है। सब दुर्गति है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें गति श्रद्धा-ज्ञान और रमना, वह एक ही आत्मा को लाभदायक है; बाकी कोई लाभदायक नहीं है। कहो, समझ में आया? **अतः वह जीव का अहित या बुरा करनेवाला है।** यह लक्ष्मी आदि पैसा, कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, अच्छा मकान, साम, दाम और ठाम—ऐसे जो साधन, वे तो जीव को अहित और बुरा करनेवाले हैं।

मुमुक्षु : उत्साह... उत्साह से करता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्साह... उत्साह से करता है, पाप बाँधता है और उससे नुकसान करता है। आहाहा! भाई! यह तो दुनिया से उल्टी बात है। समझ में आया? देखो!

वह जीव का अहित.. यह लड़का और लड़कियाँ, यह इज्जत और यह कीर्ति, यह

मकान और पैसा सब आत्मा को दु:खदायक और अहित के करनेवाले निमित्त हैं। समझ में आया? **बुरा करनेवाला है। इसलिये यह समझ रखो कि धनादिक के द्वारा जीव का लेशमात्र भी उपकार नहीं हो सकता।** निर्णय करो कि इनसे उपकार नहीं तो आत्मा पर इसका लक्ष्य जायेगा। नहीं तो इनसे उपकार (मानेगा) तो इकट्ठा करो तो फिर होगा, इसलिए लक्ष्य आत्मा पर विघ्न करेगा, वह वैरी है आत्मा का। आहाहा! लड़के-लड़कियाँ अच्छे हों निवृत्ति मिले या नहीं? यह इनकार करते हैं, कहते हैं। इस शरीर को है। बापू! वहाँ चलो, बापूजी वहाँ चलो, बापूजी वहाँ चलो। क्या है? हम आजीविका का साधन भेजेंगे, जाओ। तीन जनें मरोगे तब उठाने आयेंगे। अभी तुम तुम्हारे भटको अकेले। तुम्हारा विवाह किया, स्त्री, पुत्री किये, सब किया, तुम वहाँ रोटी खाओ निश्चिन्तता से और हम अकेले यहाँ खायें? वह बुढ़िया पकावे और यहाँ खाना उसे, लो! कहो, समझ में आया? इनकी काकी माँ है न! वह तो वृद्ध है न, उन्हें निकालकर ये सब जवान महिलाएँ लहर करेंगी और वे वहाँ करे और वे वहाँ करे हैरान होने गये हैं, लो! ऐई! इनका सुमनभाई हैरान होने गया है। महीने में दस हजार का वेतन मिलता है। सुमनभाई को ऐसे दस हजार। ऐसे दूसरों को ऐसा हो जाता है कि रामजीभाई का लड़का सुमनभाई! ओहोहो! दस हजार का मासिक वेतन। ऐई! लो! धूल में भी नहीं, कहते हैं। वह लक्ष्मी आत्मा को नुकसान करनेवाली है। कहो, उस पर लक्ष्य जाये तो नुकसान करनेवाली है, अकेला पाप है। लाख पैदा करता हो, पाँच लाख महीने कमाता हो, उसका लक्ष्य वहाँ है तो अकेला पाप बाँधता है।

मुमुक्षु : ....पैसा तो कमाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं कमाता। पाप कमाता है। यह इसे पैदा-पैदा घुस गया है अन्दर से और एक ओर कहे, मर गयी लक्ष्मी, एक बार ऐसा कहता था। अन्दर घुस गयी है लक्ष्मी। ऐ... मोहनभाई! यह तो तुम्हारी सब पोल खुलती है।

इष्टोपदेश है न! भगवान! तू तो आनन्दकन्द है न प्रभु! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भरा है, वह सुख का सागर है। सुख के सागर का साधन तो तुझमें तुझसे है। कोई बाहर से साधन है नहीं। शरीर-बरीर अच्छा हो और शरीर तथा साधन अच्छा हो तुझे उपकार हो, (ऐसा) बिल्कुल नहीं है। सब नुकसान करनेवाले हैं। निमित्त से बात है, हों! अभी निमित्त से बात है न! इसे वहाँ से लक्ष्य छुड़ाना है। लक्ष्य छुड़ाना है। शरीर के जितने

साधन लक्ष्मी आदि हैं, उनसे लक्ष्य छुड़ाकर चैतन्य पर लक्ष्य कराना है। छोड़ न इतनी लप (लालसा) अब। यह सब तुझे लाभदायक धूल भी नहीं है। जहाँ-जहाँ लक्ष्य करेगा, लड़के पर और स्त्री पर, पुत्री पर और अमुक पर... भाई! सबके अच्छे लड़के अच्छे ठिकाने डाले हों, विवाहित हुए हों न तो अपने को ठीक रहे। नहीं तो अपने को खेद रहे। मूढ़ है, कहते हैं। ऐ.. मोहनभाई! यह सब बातें करे फालतू होकर। भगवानभाई!

दुर्गति का कारण है। अहित और बुरा करनेवाले हैं। भगवान आत्मा का लक्ष्य छोड़कर जितना परद्रव्य में तेरा आश्रय और लक्ष्य जाता है, सब तुझे अहित करनेवाला है। समझ में आया? परन्तु यह लक्ष्मी देकर इस दान में जाये परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ है, इसलिए पुण्यबन्ध का-आत्मा को बन्धन करनेवाला नुकसान करनेवाला है यह भी। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पैसे हुए और उन पर लक्ष्य हुआ कि इसे खर्च किया, वह भी शुभराग है, वह बन्धन का कारण है, आत्मा को नुकसान का कारण है; जरा भी लाभ नहीं। आहाहा! पैसा होगा तो मन्दिर बनाऊँगा, अमुक करूँगा, धूल करूँगा। अब यह कर न अब। वह तो होना होगा तो होगा। ऐई! अब यह तो कहीं बात रही।

व्यवहारिक बातें सब ऐसी हैं। बाहर दूसरा और अन्दर दूसरा 'चबाने के दूसरे और दिखाने के दूसरे।' हाथी के दाँत बाहर के दूसरे होते हैं, चबाने के दूसरे होते हैं। इनसे चबाया नहीं जाता, (चबाने में) काम नहीं आते। दूसरों की बातें करे कि बापू! यहाँ करना। इस लड़के को कहे मन्दिर बनाना अच्छे में अच्छा। अहमदाबाद में दूसरों की अपेक्षा पाँच लाख का मन्दिर बनाना चाहिए। वहाँ तो ऐसा कहे। सामने अमुक। पहले से लगावे कि पचास हजार मुझे ऐसे हैं और अमुक है, अमुक ऐसा नहीं चलेगा। पैसे की हीनता की बात नहीं सुने। ऐसा रामजीभाई कहते, खबर है? कम पैसे की बात सुनाना नहीं। पैसा नहीं, पैसा नहीं, ऐसी बात नहीं सुनी जाये तुम्हारे। मलूकचन्दभाई ऐसा कहे? पोपटभाई! पैसा कम है ऐसा मलूकचन्दभाई से नहीं कहा जाये, ऐसा कहते हैं। मोहनभाई कहते हैं। आहाहा! जितना आत्मा के चैतन्य के लक्ष्य का आश्रय छोड़कर जितना पर के पदार्थ पर लक्ष्य जाता है, वह सब बन्धन का ही कारण है। आहाहा! यह मन्दिर और देव-गुरु और शास्त्र की ओर जितना लक्ष्य जाता है, वह भी आत्मा को बन्धन का ही, नुकसान का ही कारण है। यह तो बात कोई अजब की है न! ऐसा यह कहते हैं अन्दर।

भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी सद्चिदानन्दनाथ, अनन्त गुण का सागर प्रभु आत्मा है। उसका अन्तर्लक्ष्य और आश्रय करके हित करना चाहिए। वह हित करना, वह इस शरीर को नुकसान करनेवाला होगा और इसके लाभ के कारण से तुझे नुकसान का कारण होगा। आहाहा! यह तो दुनिया का, परद्रव्य का उत्साह उड़ा देते हैं, ऐसा कहते हैं, भाई! तेरे आत्मा के अतिरिक्त पर अनन्त द्रव्य चाहे जो हों, लाख सुविधा और मकान और ऐसे ढेर पैसे (हों), और एक-एक दिन की लाख-लाख दो-दो लाख की आमदनी हो, कुछ मेहनत किये बिना सहज चले आवें, परन्तु बापू! तेरा तक्ष्य वहाँ जाता है, वही बन्धन है। क्या है तुझे? समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्य की लक्ष्मी शुद्ध पड़ी है, उसमें प्रभु! तेरा लक्ष्य तो वहाँ अन्दर चाहिए। उसका लक्ष्य छोड़कर इन सब परलक्ष्य में जाता है, भाई! तुझे नुकसानकारक है। शरीर को तू लाभदायक माने परन्तु तुझे तो नुकसानकारक है, ऐसी बात है। आहाहा! वीतरागी सन्तों की यह बात है, भाई! समझ में आया? **इसलिये यह समझ रखो कि धनादिक के द्वारा जीव का लेशमात्र भी उपकार नहीं हो सकता।** पचास लाख, करोड़, पाँच करोड़ इकट्ठे हुए, मन्दिर बनाऊँगा, उससे जरा भी आत्मा को लाभ नहीं होगा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....कोई बनायेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनाता है कौन, वह बनायेगा नहीं? ऐई! दो धारी तलवार है, दो धारी। आहा! बनाता कौन है? रजकणों की पुद्गल की पर्याय उस क्षण में होनेवाली हो, उसकी वह होती है। क्या वहाँ मूलचन्दभाई का भाव काम करता है? ऐई! जगत के तत्त्व अजीव परमाणु के स्कन्ध हैं। वे पलटते प्रवाह से आने पर जहाँ लगने हों, उस लगने के काल में ही लगनेवाले हैं। उसमें दूसरा कोई इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र उसका कर्ता है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इनके घर में मन्दिर होता है न? वह तीस हजार का होता है न वहाँ? कौन करे? भाई! तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : पैसेवाले करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसावाला कौन करे? धूल करे। पैसा-पैसे में जाये, मकान, मकान में हो। पैसे से मकान होता होगा? एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य का होता होगा? आहाहा!

यह तो इस जगत से सब उल्टी बात है, भाई! समझ में आया? इसलिए समझ रखो, ध्यान रखो कि धनादि, धन, लक्ष्मी, कुटुम्ब, अच्छे लड़के हुए और यह सब हुआ और धूल हुई, मकान अच्छा हुआ, खिड़की दरवाजे और हवा-पानी ठीक से रहेंगे और शरीर की स्वच्छता रहेगी, ऐसी जगह पर्वत के ऊपर मकान बनाते हैं, भाई! लो! अच्छे में अच्छी जगह, वहाँ ऊँचे बनाते हैं, लो! समझ में आया? और हवा पानी रहे तथा आरोग्य हो तो सब ठीक पड़े। धूल में भी ठीक नहीं, सुन न! जितना लक्ष्य पर के ऊपर जाता है, उतना तेरा स्व-आश्रय नाश होता है। समझ में आया? आहाहा! कान्तिभाई! यह किस प्रकार की बात? वीतराग की ऐसी बात होगी? ऐसी बात वीतराग की लोगों ने सुनी नहीं। बापू! तेरा तत्त्व भिन्न है, प्रभु! ये रजकण इस शरीर के, मिट्टी के आकर पड़े, वे तेरे नहीं हैं और उन्हें बाहर के निमित्त से कुछ निरोगता—रोगता हो, उसमें तुझे क्या लाभ है? आहाहा! दृष्टि का बड़ा अन्तर है।

उसका उपकारक तो धर्म ही है। लो! आत्मा का उपकारक तो एक धर्म है। भगवान शुद्ध आनन्द-सागर, चैतन्य के पूर जो पड़ा है आत्मा, उसकी अन्तर में एकाग्रता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्रता, वही आत्मा को उपकारक और लाभदायक है; बाकी कोई आत्मा को उपकारक है नहीं। वह शुभभाव होवे, वह उपकारक नहीं—ऐसा कहा इसमें, भाई! समझ में आया? यह कहेंगे, शुभभाव रहे, उससे पुण्य बँधे, शरीर को उपकार हो। अर्थात् शरीर कुछ ठीक मिलेगा। यह बाद में कहेंगे। तेरे आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा इस पुण्य और पाप के परिणाम से भी जीव को तो नुकसान ही है। शुद्ध अनाकुल चैतन्यमूर्ति आनन्द का कन्द प्रभु सच्चिदानन्द, जब तक आत्मज्ञान न करे, तब तक उसे सब भाव नुकसान का ही कारण है। एक आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मशान्ति एक ही जीव को उपकारक है। बाकी पुण्य का विकल्प, शरीर, लक्ष्मी कोई जीव को उपकारक है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उसी का अनुष्ठान करना चाहिये। देखो! उसका अनुष्ठान करना चाहिए, भाई! आत्मा महान पदार्थ है न, प्रभु! तेरे पदार्थ में क्या भरा है, वह तुझे खबर नहीं। पूर्ण शान्ति पड़ी है, अनन्त आनन्द है, भाई! ऐसा तू आत्मा है। यह पुण्य और पाप, शरीर तू वह नहीं है। जिसमें नहीं तू, उसमें से तुझे उपकार कैसे होगा? जिसमें नहीं तू—पुण्य-पाप के

परिणाम में, शरीर में, लक्ष्मी में, पुत्र में-जिसमें नहीं तू, उनसे तुझे उपकार कैसे होगा? समझ में आया? जिसमें नहीं तू, उसका लक्ष्य करने से तुझे नुकसान, नुकसान, अलाभ है। आहाहा! यह तो सब उड़ जाता है। यह स्त्री, पुत्र अच्छे हुए, लड़के अच्छे हुए और हर्ष हुआ न... चिमनभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पक्की नहीं होती। इसने कभी नहीं की। यह उड़ाऊ बात बाहर की... बाहर की.. बाहर की.. यह उड़ाऊँ की सुनकर उड़ाऊ की बातें, इनके कारण अन्तर में क्या चीज़ है, उसका माहात्म्य, उसकी महिमा नहीं आयी। बिजली की चमक जैसे संयोग, इन संयोगों में ही इसकी अन्दर में कुछ... कुछ... कुछ... इसके कारण, कुछ इसके कारण लाभ, ऐसी अनादि की इसकी मान्यता पड़ी है परन्तु भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति प्रभु है। मेरा स्वाश्रयभाव एक ही मुझे उपकारक है, ऐसा इसने अनन्त काल में यथार्थरूप से निर्णय नहीं किया। उसका अभ्यास ही नहीं, वह अभ्यास ही पर का पूरा हो गया है। आहाहा! शरीर में जरा भोग का सुख मिले, तब तो कहते हैं कि कदाचित् इस शरीर को ठीक, परन्तु तेरे आत्मा को तो नुकसानकारक है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग की बातें हैं, भाई! तब अब शिष्य प्रश्न करता है। यह एक श्लोक पहले कहते हैं।

दोहा – आतम हित जो करत है, सो तन को अपकार।
जो तन का हित करत है, सो जियको अपकार।।१९।।

आतम हित जो करत है, सो तन को अपकार। वह तन को-शरीर को नुकसान करनेवाला है। आत्मा का हित अन्तर दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा का हित करनेवाले हैं। वे शरीर को लाभ नहीं करते। इतनी बात वहाँ अपकार में लेना। समझ में आया? शरीर पर लक्ष्य नहीं रहता, शरीर का होना होगा वह होगा, परद्रव्य का होना होगा वह होगा, मेरे द्रव्य का लाभ लूँ न! परद्रव्य के लिये मुझे कुछ है नहीं।

जो तन का हित करत है, सो जियको अपकार। लो! जो शरीर के लिये अनुकूल दिखता है-पैसा, लड्डू, दाल, भात, स्त्री, परिवार, सेवा, सुश्रुषा करनेवाले, खम्मा.. खम्मा.. समझ में आया? सेवा करनेवाले। देखो! ऐसे देखो! कहाँ गये? कान्तिभाई! यह सेवा करनेवाले कैसे होते हैं? लो न, वीरजीभाई की कैसी सेवा करते थे? तो उसे आत्मा

का लाभ है या नहीं जरा भी ? नहीं। वह बेचारी खड़ी-खड़ी ऐसे काम-सेवा करें महिलाएँ बेचारी, लड़कियों की भाँति काम करती। ओहोहो! लड़की काम न करे ऐसा। बापूजी का शरीर लुवे, सोते में पेशाब, दस्त साफ करे, अपने आप साफ करे। कहते हैं कि उसमें शरीर को भले ठीक हो परन्तु आत्मा को तो उस ओर का लक्ष्य है, उतना नुकसानकारक है। अरे... अरे..! गजब बात।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किये बिना इसका छुटकारा कहीं नहीं है। मर जाये। दुनिया इसे दूसरे प्रकार से उल्टे रास्ते चढ़ा दे। इस मार्ग के बिना इसका उद्धार नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने कहा हुआ सत् सरल मार्ग यह एक ही है। स्वद्रव्य का आश्रय करना, परद्रव्य का आश्रय / लक्ष्य छोड़ना। इसके बिना तुझे लाभ नहीं है - यहाँ मूल तो ऐसा कहते हैं। अब शिष्य का प्रश्न है, हों!

अथवा काय का हित सोचा जाता है,.. महाराज सुनो! मैं शरीर की कुछ बात करूँ, शिष्य कहता है। तुमने तो निकाल ही डाला सब। **अर्थात् काय के द्वारा होनेवाले उपकार का विचार किया जाता है।** शिष्य कहता है, सुनो महाराज! हों! जरा बात तो सुनो मेरी, हम कहते हैं, एकदम निकाल डालते हो, निकाल डालते हो, निकाल ही डालते हो सब। **देखिये कहा जाता है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'..** शरीर, वह धर्म का साधन है और शरीर तथा लक्ष्मी साधन परम्परा सब आत्मा को लाभ का कारण है, हो गया। शिष्य कहता है, यह प्रश्न करता है, हों!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब सुन तो सही न परन्तु सब। क्या करे ? डाले जहाँ-तहाँ विपरीत मान्यता। **शरीर धर्म-सेवन का मुख्य साधन-सहारा है।** महाराज! तुम इतना सब निकाल डालते हो, परन्तु इस दुनिया में कहा जाता है कि 'शरीर से सुखी, वह सुखी सर्व बातें' यह तो उसने रट रखा है। खोटा-खोटा सूत्र। शिष्य ने यहाँ ही लगायी है, हों! कि हम तो ऐसा सुनते हैं कि शरीर से सुखी, वह सुखी सर्व बातें। मूढ़ है। ऐसा कहाँ से निकाला ? शरीर को सुख, उसमें तुझे क्या है ? सुख अर्थात् शरीर में निरोगता में तुझे क्या

है ? निरोगता से आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं परन्तु निरोगता है, उसकी ओर लक्ष्य जाने पर तुझे अकेला पाप ही बँधता है। आहाहा!

मुमुक्षु : रट रखा है और सब मीठी शक्कर जैसा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमने अधिक कहा। बात तो मीठी शक्कर जैसी लगती है। है तो ऐसा। कहो, समझ में आया ? शरीर, धर्म सेवन का मुख्य साधन है। शरीर अच्छा न हो तो महाराज! तुम धर्म-बर्म करो। ऐं.. ऐं.. होता होगा,... निकलता होगा, बैठा नहीं जाये, कमर टूटती हो, टूटती हो और १०५-५ डिग्री बुखार हो, छह-छह डिग्री बुखार हो, घनघनाहट हो। तुम कहो कि शरीर धर्म का साधन नहीं। परन्तु यह धर्म ऐसा शरीर होवे तो धर्म होगा। इसके बिना होती होगी सामायिक ? कहो, अरे! शरीर में छह-छह डिग्री के बुखार के समय भी ध्यान करनेवाले आत्मा का ध्यान करके शान्ति को वेदन करते हैं। तुझे उसके घर में क्या काम है वहाँ ? समझ में आया ? शरीर में १०६-६ डिग्री का बुखार, सात-सात डिग्री का बुखार। उसके घर में रहा जड़। मुझे कहाँ स्पर्श करता है ? स्वयं भले सो रहा हो, बैठा नहीं जाये तो, समझ में आया ? आत्मा अन्दर से भिन्न करके, लक्ष्य करके वेदन करे। शरीर कहाँ उसे नुकसान करता है। समझ में आया ?

यह मुनि महाराज महान दिगम्बर सन्त जंगल में बसते हैं। यह बिच्छु का डंक हो, एक ओर यहाँ से उतरे, एक साथ में पाँच-दस बीस निकले हों, ध्यान में बैठे हों और बिच्छु काटे हों और ऐसा.. वहाँ कहाँ डॉक्टर बैठा था तुरन्त ? पाटा-पिण्डी करो और काट डालो, उसे जहाँ इतना काटा है और वहाँ अमुक है। एकदम! अहो! ऐसी पीड़ा नरक में अनन्त बार संयोग में मिली है। हम संयोगी चीज़ में नहीं हैं। हम जहाँ हैं, वहाँ संयोग स्पर्श नहीं करते। ऐसी अन्तर्दृष्टि बदलकर नजर लगाकर अन्दर आनन्द में स्थित होते हैं। बिच्छु के काटने में! यह तो बिच्छु काटे तो चिल्लाने लग जाये। हाय.. हाय.. हाय.. करे। अब सुन, वह तो जड़ की दशा हुई।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निमित्त हुआ नहीं, यह तो स्वयं ने किया, तब कहलाये। निमित्त कहाँ बात है ? यह तो कहना है कि ऐसे समय में भी ऐसी पीड़ा (होवे).. यहाँ तो अभी दो डिग्री निकाले, ९८-९९-१०० आवे वहाँ उं.. उं... उं... किया करे। बनिया

निर्बल। ऐ... नटुभाई! मूलजीभाई का दृष्टान्त देते थे। मूलजीभाई का, हों! अन्त में उन्होंने बहादुरी की। मूलजीभाई थे न? पहले एक बार गये थे, तब ९९-९९.५ (बुखार था)। गृहस्थ व्यक्ति थे। बहुत लाख तो (संवत्) १९७६ के वर्ष में लाये थे। लाख कितने? पन्द्रह लाख, सोलह लाख, चौदह लाख जितने। तब तो गृहस्थ वे अधिक थे, हों! जरा बुखार आवे वहाँ ऊं.. ऊं.. करे। परन्तु क्या है? महिलाएँ कहे यह तो एक ९९.५ हो तो ऐं.. ऐं... करते हैं। परन्तु मरते समय उन्होंने बहादुरी की, हों! मरते हुए पीड़ा उठी। वह क्या कहलाता है? बुलाओ लालभाई को। वे (परिजन) कहें डॉक्टर को बुलाओ। पैसेवाले व्यक्ति थे। डॉक्टर को बुलाओ। ये कहें, लालभाई को बुलाओ। सबेरे बुलाकर कहा। वहाँ तो ठीक हो गया। दोपहर को वापस (दर्द) उठा, वे कहें बुलाओ डॉक्टर को। यह कहो, बुलाओ लालभाई को। लालभाई सुनाने लगे अरे! मूलजीभाई! इस शरीर का रोग होता है, वह आत्मा देखता है। आत्मा इसका शरीर का जाननेवाला है, आत्मा में रोग नहीं है। आत्मा उसका जाननेवाला है। शरीर का रोग... काया का धर्म जीवपद में ज्ञात होता है। यह शरीर का रोग ज्ञात होता है। मूलजीभाई कहते हैं, शरीर का रोग आत्मा जाने? या आत्मा अपने को जाने? पर को जाने? ऐई! यह तो मूलजीभाई की बात की। उनका तो अभ्यास बहुत वर्ष का था। यह अलग बात है। वीरजीभाई की लाईन अलग, उन्हें तो बहुत वर्ष का अभ्यास था। वह तो अलग प्रकार का व्यक्ति था।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बस वह... शोर करे उसका।

मुमुक्षु : भानुभाई गुजर गये तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भानुभाई के समय सबने हिम्मत रखी थी। ऐसे अट्ठाईस वर्ष का युवक लड़का, दो वर्ष का विवाहित (गुजर गया तो भी) समाधान, समाधान। स्थिति पूरी हो, समय से चला जाता है। वे... बहिन कहे, यह भी चला। स्थिति पूरी हो, वहाँ जायेगा, रोना नहीं ऐं.. ऐं.. करके। 'सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी' मुर्दा उठाकर ले जाते हैं। अट्ठाईस वर्ष का युवक। बड़ा बीस लाख में विवाहित। दो वर्ष की विवाहित स्त्री। अब होता है तो क्या है तुझे? समझ में आया? मरते यह एक शब्द उसका कठोर, हों! भाई ने

कहा था। उन रजनीभाई ने। है न बैरिस्टर ? मूलजीभाई का लड़का बैरिस्टर है। बापूजी अन्त में ऐसा बोले थे, रोग देखे आत्मा ? आत्मा रोग को जाने ? वहाँ लक्ष्य करे कि यहाँ रोग है और रोग है, उसे मैं जानता हूँ, ऐसा लक्ष्य करे ? आहाहा ! इतना जोर तो किया। समझ में आया ? आत्मा, आत्मा को जाननेवाला है। जड़ को जानने पर लक्ष्य रखे ? वहाँ रखे ? यहाँ रोग है और यहाँ रोग है और मैं जानता हूँ, अब मुझे सहन करना - ऐसा रखकर करे ? समझ में आया ?

आत्मा.. आहाहा ! मैं स्वयं ही अपना जाननेवाला हूँ। उसमें भी समल-विमल अवस्था को भी नहीं, भेद नहीं, भेद नहीं, भेद नहीं। जानने-देखनेवाला, जानने-देखनेवाला स्व को, हों ! जाओ छूट गये। समझ में आया ? उसे फिर जन्म-मरण नहीं होता, होवे तो एकाध दो (भव) हों। ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए, उसमें आत्मा को परवस्तु कुछ लाभदायक है नहीं।

यह शिष्य कहता है महाराज ! धर्म सेवन का साधन। **इतना ही नहीं, उसमें यदि रोगादिक हो जाते हैं, तो उनके दूर करने के लिये प्रयत्न भी किये जाते हैं।** साधन भी है, साधन नहीं - ऐसा नहीं। ध्यान का कहेंगे अधिक तो। समझ में आया ? **काय के रोगादिक अपायों का दूर किया जाना मुश्किल भी नहीं है,..** वापस बहुत तुम ऐसा कहते हो कि शरीर में रोग आवे और उसे नुकसान टाल न सके, ऐसा नहीं है। ध्यान से रोग मिट जाते हैं। आत्मा को ऐसे लाभ होता है और ऐसे भी लाभ होता है। देखो ! यह लिया है। आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाई सिद्ध करना है न ! **काय के रोगादिक अपायों का दूर किया जाना मुश्किल भी नहीं है, कारण कि ध्यान के द्वारा वह (रोगादिक का दूर किया जाना) आसानी से कर दिया जाता है,..** अन्तर में ज्ञान का ध्यान किया, उसके कारण रोग भी मिट जाता है, वह पुण्य-बुण्य बँध जाये न (तो) रोग भी घट जाता है। आत्मा को तो लाभ हो जाये परन्तु रोग भी घट जाता है, ऐसा शिष्य कहता है। समझ में आया ? ऐ.. शुकनचन्दजी ! देखो, कैसा प्रश्न करता है ?

यह आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. अन्दर जहाँ शुद्ध चैतन्य की श्रेणी में चढ़ा, वहाँ तो शुद्धता तो बढ़े, परन्तु कहते हैं कि कुछ रागादि बाहर पुण्य बँध जाये, शरीर में निरोगता हो जाये, ध्यान से दोनों फल होते हैं। समझ में आया? शिष्य का प्रश्न ध्यान में से निकाला, हों! ध्यान के फल में से निकाला, लक्ष्मी में से नहीं, अमुक में से नहीं। अब सुन, सुन! उसे नुकसान करनेवाला है न! आत्मा का अनुष्ठान शरीर को नुकसान करनेवाला है। नहीं, नहीं। आत्मा का ध्यान करे तो आत्मा को भी लाभ होता है और उसमें शरीर को भी लाभ होता है, निरोगता होती है। शुभराग से पुण्य बँध जाये तो निरोगता होती है, स्वस्थता रहती है। ध्यान के दो लाभ हैं। शरीर को लाभ करता है – ऐसा शिष्य प्रश्न करता है। **आसानी से कर दिया जाता है,..** ऐसा सहज। आत्मा की अन्तर एकाग्र होने पर ऐसा कोई पुण्य बँध जाये, अन्दर रोग मिट जाये, लो! शरीर में रोग घट जाये, निरोगता हो जाये, दोनों को लाभ हो।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आसानी से। यहाँ तो ध्यान लागू पड़ जाये ऐसा कि ऐसे पुण्य बँध जाये, शरीर निरोग हो जाये, तुरन्त का तुरन्त कोई पुण्य बँध जाये और साता का उदय आवे तो रोग मिट जाये।

जैसा कि तत्त्वानुशासन में कहा है–'यत्रादिकं फलं किंचित्।'। देखो! **जो इस लोक सम्बन्धी फल हैं, या जो कुछ परलोक सम्बन्धी फल हैं, उन दोनों ही फलों का प्रधान कारण ध्यान ही है।** लो! तत्त्वानुशासन में कहा है, कहते हैं। इस लोक का भी फल मिले, पुण्य आदि शरीर निरोगता हो और आत्मा को शान्ति (मिले) अन्दर के धर्मध्यान से दोनों मिलें, दोनों मिलें। **मतलब यह है कि 'झाणस्स ण्सा दुल्लहं किं पीति च' ध्यान के लिये कोई भी व कुछ भी दुर्लभ नहीं है,..** वह शिष्य कहते हैं। **ध्यान से सब कुछ मिल सकता है। इस विषय में आचार्य निषेध करते हैं, कि ध्यान के द्वारा काय का उपकार नहीं चिंतवन करना चाहिये–** मूढ़! शरीर को ठीक रहे, यह चिन्तवन करना नहीं। वह तो उसके कारण से होना हो, वह होगा। आत्मा का ध्यान कर, आत्मा का। आहाहा! काया में ठीक होगा, यह अब छोड़ दे।

जो इस लोक सम्बन्धी फल हैं, या जो कुछ परलोक सम्बन्धी फल हैं, उन दोनों ही फलों का प्रधान कारण ध्यान ही है। मतलब यह है कि 'झाणस्स ण्सा दुल्लहं किं पीति च' ध्यान के लिए कोई भी व कुछ भी दुर्लभ नहीं है, ध्यान से सब कुछ मिल सकता है। इस विषय में आचार्य निषेध करते हैं, कि ध्यान के द्वारा काय का उपकार नहीं चिंतवन करना चाहिए–

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्काऽऽद्रियन्तां विवेकिनः।।२०।।

अर्थ – इसी ध्यान से दिव्य चिंतामणि मिल सकता है, इसी से खली के टुकड़े भी मिल सकते हैं। जबकि ध्यान के द्वारा दोनों मिल सकते हैं, तब विवेकी लोग किस ओर आदरबुद्धि करेंगे?

विशदार्थ – एक तरफ तो देवाधिष्ठित चिन्तित अर्थ को देनेवाला चिन्तामणि और दूसरी ओर बुरा व छोटा सा खली का टुकड़ा, ये दोनों भी यदि ध्यान के द्वारा अवश्य मिल जाते हैं, तो कहो, दोनों में से किसी की ओर विवेकी लोभ के नाश करने के विचार करने में चतुर–पुरुष आदर करेंगे? इसलिए इसलोक सम्बन्धी फल काय की नीरोगता आदि की अभिलाषा को छोड़कर परलोक सम्बन्धी फल की सिद्धि–प्राप्ति के लिए ही आत्मा का ध्यान करना चाहिए। कहा भी है कि 'यद् ध्यानं रौद्रमार्तं वा'।।२०।।

'वह सब रौद्रध्यान या आर्तध्यान है, जो इसलोक सम्बन्धी फल के चाहनेवाले को होता है। इसलिए रौद्र व आर्तध्यान को छोड़कर धर्मध्यान व शुक्लध्यान की उपासना करनी चाहिए।'

दोहा – इस चिंतामणि है महत, उत खल टूक असार।
ध्यान उभय यदि देत बुध, किसको मानत सार।।२०।।

गाथा - २० पर प्रवचन

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्काऽऽद्रियन्तां विवेकिनः।।२०।।

अर्थ – इसी ध्यान से दिव्य चिंतामणि मिल सकता है,.. क्या कहते हैं? जिसके ध्यान से दिव्य चिन्तामणि परमात्मा शान्ति मिलती है। **इसी से खली के टुकड़े भी मिल सकते हैं।** एक खली का टुकड़ा मिले। **जबकि ध्यान के द्वारा दोनों मिल सकते हैं, तब विवेकी लोग किस ओर आदरबुद्धि करेंगे?** वहाँ लक्ष्य रखेंगे कि मुझे ऐसा हो जाएगा, शरीर ऐसा मिला, ध्यान करूँ-धर्मध्यान करूँ तो मुझे निरोग शरीर होगा, वहाँ लक्ष्य रखना है इसे? चिन्ता वहाँ करनी है? यह कहाँ लग पड़ा वापस? समझ में आया?

आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है। उसका आश्रय कर न! उसका आश्रय करने से होना होगा, वह सहज होगा। परन्तु आशा करना? जिससे चिन्तामणि रत्न मिले, उससे चिन्तामणि को इच्छे कि यह मुझे खली का टुकड़ा देना। चिन्तामणि मिली, कहते हैं, चिन्तामणि देव अधिष्ठित। फिर क्या करे? एक खली का टुकड़ा लाना। परन्तु वह उसके नहीं माँगा जाता। चिन्तामणि से तो ऐसा कहे कि लाओ, लाख महल बनाओ, और झूला डालो, सोने की साँकल डालो, यह करो, ऐसा करूँ उसके पास। ऐसा होता है चिन्तामणि के पास से। चिन्तामणि से खली का टुकड़ा मँगाया जाता होगा? मूर्ख है?

इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित वस्तु है। उसके ध्यान में चिन्तामणि-आत्मा की शान्ति प्राप्त हो, उसका माँग कर न! उसमें मेरी निरोगता हो और यह हो और यह कहाँ मूर्खता की है तूने? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इसी ध्यान से दिव्य चिंतामणि मिल सकता है, इसी से खली के टुकड़े भी मिल सकते हैं। जबकि ध्यान के द्वारा दोनों मिल सकते हैं, तब विवेकी लोग किस ओर आदरबुद्धि करेंगे?** किस पर ध्यान रखे? चिन्तामणि पर या टुकड़े पर? आहा!

विशदार्थ–एक तरफ तो देवाधिष्ठित चिन्तित अर्थ को देनेवाला चिन्तामणि.. लो! पत्थर मिला एक। **और दूसरी ओर बुरा व छोटा सा खली का टुकड़ा,...** बुरा

और वापस छोटा, सड़ा हुआ, पुराना खली का टुकड़ा। पुराना हुआ हो, पुराना। खोरा और वापस बुरा। **ये दोनों भी यदि ध्यान के द्वारा अवश्य मिल जाते हैं, तो कहो, दोनों में से किसी की ओर विवेकी लोभ के नाश करने के विचार करने में चतुर-पुरुष आदर करेंगे?** किसकी ओर विवेक लोभ के नाश करने के विचार करने में चतुर पुरुष किसका आदर करेगा? कहते हैं। अज्ञानी भले दूसरा माने। विवेकी, लोभ के नाश करनेवाला, वापस विचार करने चतुर। विचार करने में चतुर, वह पुरुष किसका आदर करे? चिन्तामणि का आदर करे या इसका करे? चिन्तामणि-चैतन्य चिन्तामणि है।

चिन्तामणि भगवान आत्मा चैतन्य आनन्दकन्द चिन्तामणि है। जितनी एकाग्रता हो, उतनी शान्ति का फल तुरन्त नगद मिले, ऐसा है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द से (भरपूर) पड़ा है। चैतन्य आनन्द, चैतन्य चमत्कार, आनन्द का चमत्कार, पर से हटकर जितना आत्मा के आनन्द में एकाग्र आया, उतनी तात्कालिक शान्ति और आनन्द का फल मिले, ऐसा चिन्तामणि आत्मा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह (जड़) चिन्तामणि (तो) तुरन्त ही ख्याल में आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, इसे माहात्म्य नहीं आता। मैं इतना! उस पत्थर की कीमत लगती है, परन्तु पत्थर की कीमत करनेवाला कितना कीमती है? भगवान जाने! मैं इतना बड़ा, मैं इतना बड़ा! आहाहा! इसका लक्ष्य ही वर्तमान पर्याय और राग पर है तथा संयोग पर है, परन्तु पर्याय के अंश के पीछे भगवान बड़ा विराजता है, सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं ही ध्रुवस्वरूप है। आहा! उसकी शरण में इसे माहात्म्य लगे बिना आश्रय ले नहीं।

कहते हैं कि जिसे ऐसास आश्रय मिला, जो चिन्ते, उतना हो। उस (जड़) चिन्तामणि में चिन्ते उतना बाहर में मिले। इसमें भी भगवान आत्मा जितना एकाग्र होता है, उतनी शान्ति तत्काल मिलती है। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। सुख का सागर, नहीं आया था? सुख पूर-पूर है। उसमें जितना सन्मुख होकर एकाग्र होवे, तात्कालिक चिन्तामणि अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को दे। उसे अब पुण्य और पुण्य के फल का काम क्या है तुझे? आहाहा! समझ में आया?

जिसकी कटाक्ष दृष्टि में चक्रवर्ती चैतन्य कंपकर उठे-जागे, ऐसे अन्दर से, आहा!

उसकी शरण लेना है तुझे। किसकी शरण लेना है ? समझ में आया ? आहा ! जिसकी एक नजर पड़ने से पूरा निधान ख्याल में आवे, ऐसा भगवान आत्मा... भाई ! उसकी एकाग्रता विवेकी चतुर पुरुष को होती है या उसे उस खली के टुकड़े की याचना (होती है) ? पुण्य होना और फिर स्वर्ग मिलना और शरीर निरोग रहना। (यह तो) खली का टुकड़ा है, वह भी सड़ा हुआ। आहाहा !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो भी... त्रांसी अर्थात् ऐसा है, उसे ऐसे करे - ऐसा कहते हैं। जिसके सन्मुख देखने से, भगवान जगकर शान्ति दे, ऐसा परमात्मा स्वयं तू ही है। आहाहा ! उसकी याचना करे या राग और पुण्य बँधे तथा फिर शरीर निरोग रहे और स्वर्ग में जाएँ और धूल के टुकड़े, सड़े हुए - सड़े हुए खली के टुकड़े की याचना ! चिन्तामणि मिला न ? ऐसा कहते हैं। आहाहा !

इसी प्रकार भगवान चैतन्य चमत्कार प्रभु, जिसे दृष्टि में बैठा और एकाग्रता की चिन्तामणि का फल तो तत्काल ही मिलता है। वह किसकी इच्छा करे ? पूरे जगत का राज हो तो भी खली के सड़े टुकड़े जैसा है। इन्द्र का पद मिले तो भी सम्यग्दृष्टि को सड़ा हुआ खली के टुकड़े जैसा है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! भाई ! तेरे नाथ की तुझे खबर नहीं। समझ में आया ? यह स्वामी सहजात्म भगवान आत्मा जिसे दृष्टि में आया, वह चिन्तामणि, चिन्तवे वैसा प्राप्त हो, ऐसा वह रत्न है। आहाहा ! ऐसा कहते हैं। देखो न ! कहते हैं कि ऐसा होगा, जरा-सा पुण्य बँधेगा, फिर शरीर ठीक रहेगा, स्वर्ग में जाऊँगा, फिर राग होगा न ! अरे ! ऐसी इच्छा होवे उसे ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....खली तो ढोर भी नहीं खाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं खाता। तू ढ़ोर जैसा है, यदि इच्छा करे तो, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! यह शरीर अच्छा रहे तो.. सड़ा हुआ खली का टुकड़ा है, कहते हैं। अब यह माँस का, हड्डियाँ चैतन्य से भिन्न अत्यन्त भिन्न है। कोई पूर्व-पश्चिम, शेढे-सिमाडे मेल नहीं होता दो को—शरीर को और आत्मा को। कहीं के रजकण यहाँ आकर चिपटे हैं।

एक बार कहा नहीं था ? जहररूप से परिणमित हुए रजकण पहले वे देखने से तुझे

जहर होता, वे जहर के रजकण आकर यहाँ चिपटे हैं। उनके प्रति तुझे प्रेम होता है कि बटका भर लूँ। मानो क्या किया ? यह शत्रु है तेरा। पूर्व के रजकण जहररूप से परिणमित, छुरारूप से परिणमित, बाण के मुँहरूप से... ऐसे... हाय! हाय! उस मुँह के रजकण अभी यहाँ आये हैं। नटुभाई! किसका प्रेम तुझे ? यह परमात्मा भगवान अन्दर पड़ा है। देखो! यह तो सबको उपदेश ऐसा देते हैं। ऐसा नहीं कि अमुक को, बड़ों को, स्त्री-पुत्र को नहीं, अमुक को नहीं। सबके लिये ऐसा है। सामूहिक निमन्त्रण है। आहाहा!

इसलिए इसलोक सम्बन्धी फल काय की नीरोगता... देखो! **इसलिए इसलोक सम्बन्धी फल काय की नीरोगता आदि की अभिलाषा को छोड़कर परलोक सम्बन्धी फल की सिद्धि-प्राप्ति के लिए ही आत्मा का ध्यान करना चाहिए।** परलोक अर्थात् आत्मस्वभाव, हों! उत्तम लोक, वही परलोक है। समझ में आया ? **कहा भी है कि 'यद् ध्यानं रौद्रमार्तं वा'।** लो!

'वह सब रौद्रध्यान या आर्तध्यान है, जो इसलोक सम्बन्धी फल के चाहनेवाले को होता है। इस लोक की इच्छावाले को आर्तध्यान-रौद्रध्यान ही होता है। उसे धर्मध्यान -आत्मा का ध्यान बिल्कुल नहीं होता। देखो न! इन लोगों को विचार चढ़े, वहाँ भूल जाते हैं या नहीं सब ? ऐसे आँख ऐसे की ऐसी फटकर सब भूल जाते हैं अन्दर, एकाकार हो जाते हैं पाप में। फावाभाई! आँखें भले उघाड़ी रहे। दूसरे को लगे, आत्मध्यान करते होंगे यह ? परन्तु ऐसा विकल्प आया होवे न किसी का, (तो) आँख स्थिर हो जाए। ऐसे स्थिर हो जाए अन्दर में, ऐसा कहते हैं।

जो इसलोक सम्बन्धी फल के चाहनेवाले को होता है। इसलिए रौद्र व आर्तध्यान को छोड़कर धर्मध्यान व शुक्लध्यान की उपासना करनी चाहिए। छोड़ अब उसका। यह तो अनन्त काल से किया, कहते हैं। ऐसे चिन्ताएँ तो अनन्त बार कीं, परन्तु तूने आत्मा की चिन्ता नहीं की। कहो, समझ में आया ? इसलिए आत्मा के स्वभाव के ओर की दृष्टि और ज्ञान तथा उसकी भावना रखना। पुण्य होगा और निरोगता होगी और धूल होगी - यह भावना धर्मी को नहीं होती। धर्मी को आत्मा की एकाग्रता से शुद्धि बढ़े, यह भावना होती है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)